THE TIMES OF INDIA

Date:11-12-23

Maratha Lessons

Social engineering wrong answer to dominant group quota agitation in Maharashtra and elsewhere

TOI Editorials

India's many post-Mandal reservation agitations have upended the original aim of providing temporary support to historically disadvantaged groups. Agitations are often carried out by socially and politically influential groups, aiming to use reservations as a route to enhance job prospects. On the other side, political parties are weaponising caste surveys to offer false solutions to frustrated youth.

Maratha reservation's continuing woes | Maharashtra's politics is in flux because of the unresolved issue of reservation for Marathas. Agitators for reservation issue ultimatums to the state government, which has so far treated even violent protesters with kid gloves. But the state cabinet is not united. Senior members have questioned the policy.

Running afoul of judiciary | In May 2021, the Supreme Court struck down a state government decision to provide reservation to Marathas. The judgment rested on reasoning similar to other such cases. The judiciary in general is unconvinced about the need to breach the 50% cap on group-based reservation. Exceeding the cap is only possible if governments are able to show a compelling case through the provision of credible data. None of the dominant group agitations that have been supported by political parties has managed to do so. That's unsurprising. Dominance and disadvantageousness don't usually coexist.

A pan-India problem | The unwillingness of political parties to firmly deal with these demands means that the problem lurks just beneath the surface. In Tamil Nadu, representatives of Vanniyars continue to push the state government after the apex court disallowed a law that carved out a standalone sub-quota for them. The problem cuts across regions, with dominant group agitations having their roots in what they see as poor economic prospects.

More quotas won't create jobs | India's employment market is not creating enough pathways for faster upward mobility. It's a structural economic problem. And it's not going to be solved by social engineering. Around 79% of the workforce is either self-employed or in casual labour. Relatively, few of the remaining employed are in government. Additional jobs have to come from the private sector. That means private investment. That's where political parties need to focus on.

THE HINDU

Date:11-12-23

Bad Precedent

The expulsion Of Mahua Moitra is ominous for parlimentary democracy

Editorial

The expulsion of Trinamool Congress Member of Parliament Mahua Moitra from the Lok Sabha by a hurried voice vote on December 8, based on a report of the Ethics Committee of the House, is bad in form and substance. It was not, however, surprising. By a 6:4 majority, including the vote of a suspended Congress MP, the committee recommended her expulsion, holding her guilty of 'unethical conduct,' 'breach of privilege' and 'contempt of the House.' These were charges raised by a Bharatiya Janata Party MP, who was in turn depending on the statement of Ms. Moitra's estranged partner. The committee cited in its report a precedent of the expulsion of 11 MPs in 2005 for a cash-for-query sting operation by a news platform. There was video evidence that established a strong case then, unlike the charges against Ms. Moitra. She shared her login credentials with businessman Darshan Hiranandani to upload Parliament questions, a fact she herself admitted. The committee conceded in its report that it had no proof of cash exchanges and its report called for "legal, intensive, institutional and time-bound investigation", into that aspect. Nevertheless, it was emphatic in calling for her expulsion, and even labelled the sharing of her login credentials a criminal act.

The links suggested between Ms. Moitra's Parliament questions and the business interests of the Hiranandani group are frivolous. For instance, a question on steel prices or India's trade relations with Bangladesh is of interest to numerous business groups and consumers. The committee said it acknowledged the fact that several MPs share their login credentials with others, but went on to make a laboured case that Ms. Moitra had endangered national security. The argument that MPs have access to documents on the Parliament portal that are not in the public domain is a stretched one. In fact, there is no good reason to keep draft Bills secret. Bill drafts are meant for public circulation and debate before being brought to Parliament for discussion and voting. That there is very little of that happening these days is a sad commentary on parliamentary democracy. The report of the Ethics Committee also faced the same fate. The 495 page report was tabled and voted on the same day, rejecting the appeal of Opposition MPs for a more detailed discussion once Members had the time to read it in detail. The precedent that the majority in Parliament can expel an Opposition member on a dubious charge is ominous for parliamentary democracy. The expulsion of Ms. Moitra is a case of justice hurried and buried.

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:11-12-23

भ्रामक है उत्तर-दक्षिण विभाजन की दलील

शेखर गुप्ता

गत सप्ताह चार राज्यों के विधानसभा चुनावों के बाद हमारी राजनीतिक बहस में उत्तर-दक्षिण की एक दिलचस्प नई बहस शामिल हो गई है। इस दलील में दम नजर आ सकता है कि भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) को उत्तर भारत में बढ़त हासिल है जबकि दक्षिण उसे नकारता है। इस विभाजन को विंध्य की पर्वत श्रृंखला के आर-पार वाले इलाके से जोड़ा जा रहा है। मैंने इसे दिलचस्प इसलिए कहा कि यह अति साधारण बात है जिसे कुछ और मजबूत बनाकर पेश करने की जरूरत है।

पहली बात तो यह कि भाजपा की सर्वोच्चता को चुनौती केवल दक्षिण तक सीमित नहीं है। देश के राजनीतिक नक्शे पर नजर डालें तो पता चलेगा कि भाजपा केवल उत्तर भारत में केंद्रित पार्टी नहीं बल्कि खास गढ़ों वाली पार्टी है। अगर भाजपा पूरे दक्षिण भारत में सत्ता से बाहर है तो वह पूर्वी तटवर्ती इलाकों पश्चिम बंगाल, ओडिशा, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु में भी सीमित पहुंच रखती है।

पश्चिमी तट की बात करें तो पार्टी गुजरात और गोवा में सत्ता में है। महाराष्ट्र में वह गठबंधन सरकार में है जहां मुख्यमंत्री का पद साझेदार दल के पास है। कर्नाटक और केरल विपक्ष के पास हैं।

क्या आप इसे अभी भी उत्तर-दक्षिण विभाजन कहेंगे? या फिर यह भाजपा की सीमा है कि वह तटीय राज्यों तथा बाहरी इलाकों तक पहुंच नहीं बना सकी जबकि अपने राजनीतिक गढ़ में उसे पर्याप्त लोक सभा सीट मिलती रहीं। एक बार फिर अगर हम अपनी दलील को उत्तर-दक्षिण के सरलीकरण में रखें तो पूर्वोत्तर का भविष्य क्या होगा?

अहम बात यह है कि भाजपा अपनी शक्तिशाली और सर्वविजेता छवि के बावजूद अभी कांग्रेस की उस अखिल भारतीय छवि के आसपास भी नहीं है जो पार्टी को इंदिरा गांधी के दौर में हासिल थी। हम 1984 में राजीव गांधी की 414 लोकसभा सीट की जीत को अपवाद मानकर चल रहे हैं।

सन 1971 के बाद के इंदिरा गांधी के 'सामान्य' दौर के बाद कांग्रेस को पूरे देश में सीट मिलीं और यह आंकड़ा औसतन 350 सीट के करीब रहा। मोदी-शाह की भाजपा ने 2019 के लोकसभा चुनाव में कर्नाटक, महाराष्ट्र और गुजरात के अलावा हिंदी प्रदेश में विपक्ष को पूरी तरह नष्ट कर दिया और पार्टी ने 303 लोक सभा सीट का अपना उच्चतम आंकड़ा हासिल किया।

चुनाव अभियान चलाने वालों की तारीफों को छोड़ दिया जाए तो देश के राजनीतिक मानचित्र पर एक नजर डालने पर पता चलता है कि भाजपा को 350 सीट हासिल करने के मार्ग में कई चुनौतियों का सामना करना होगा।

क्या अब हम कहेंगे कि उत्तर-दक्षिण विभाजन के अलावा एक उत्तर-पूर्व विभाजन भी है? या क्या हम यह कह सकते हैं कि हर वह राज्य जहां हिंदी प्रमुख भाषा है और भाजपा प्रमुख दल है वह उत्तर भारत का राज्य है? क्या मध्य प्रदेश उत्तर का राज्य है? बिहार को कुछ हद तक उत्तरी राज्य कहा जा सकता है क्योंकि उसकी उत्तरी सीमाएं नेपाल से मिलती हैं लेकिन छत्तीसगढ़ और झारखंड का क्या? वे मध्य भारत या पूर्व-मध्य में स्थित राज्य हैं। कहने का अर्थ है कि भारतीय राजनीति को क्षेत्रीय या भौगोलिक विभाजन के आधार पर बांटकर देखना मुश्किल है।

एक ओर जहां हम तथ्यों के आधार पर उत्तर-दक्षिण विभाजन पर सवाल कर रहे हैं तो हमें इस दलील के अंतर्निहित सिद्धांत को भी परख सकते हैं। फिलहाल तो यही नजर आता है कम विकसित, कम शिक्षित, कम प्रगतिशील और धर्मांध उत्तर भारतीय नरेंद्र मोदी की भाजपा के लिए मतदान करते हैं। जबकि दक्षिण भारत कहीं अधिक विवेक का परिचय देता है। दक्षिण भारत में हालात एकदम विपरीत हैं।

बात बस यह है कि दक्षिण के पास इतनी सीट नहीं हैं कि वह भारत को मोदी से बचा सके। जब भी नया परिसीमन होगा जो शायद जनगणना के बाद होगा तो 'सभ्य' दक्षिण भारत और अधिक हाशिये पर चला जाएगा।

ऐसा सामान्यीकरण खतरनाक है। भौगोलिक दृष्टि से देखें तो हम पहले ही यह दर्शा चुके हैं कि भाजपा की चुनौती उत्तर बनाम दक्षिण की नहीं बल्कि उसके गढ़ बनाम अन्य क्षेत्रों की है। पार्टी अब केंद्र से बाहर का सफर तय कर रही है। मध्य प्रदेश उसका गढ़ रहा है लेकिन दक्षिण, पूर्व और पश्चिम के तटवर्ती इलाकों में वह कुछ खास कामयाबी नहीं पा सकी है।

इसके अलावा अगर आप गुणात्मक दलील दें तो सन 1977 के चुनावी नतीजों को कैसे समझाएंगे? आज जिसे उत्तर कहा जा रहा है वह मुख्य रूप से हिंदीभाषी प्रदेश हैं। इन राज्यों ने आपातकाल के बाद इंदिरा गांधी की कांग्रेस को नकार दिया था। जबकि दक्षिण भारत के नतीजे एकदम विपरीत थे।

कांग्रेस को 154 लोकसभा सीट पर जीत मिली थी जिनमें से अधिकांश दक्षिण भारत से थीं। आज भाजपा जिन राज्यों में प्रभावी प्रदर्शन कर रही है उनमें से उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, राजस्थान तथा हरियाणा में कांग्रेस को दो सीट पर जीत मिली थी। इंदिरा गांधी और संजय गांधी को क्रमश: रायबरेली और अमेठी में अपनी-अपनी सीट पर हार का सामना करना पड़ा था।

वह नतीजा 2019 के नतीजों से कोई खास अलग नहीं था। क्या हम यह नतीजा निकाल सकते हैं कि सन 1977 में उत्तर भारत राजनीतिक रूप से अधिक सचेत था जबकि दक्षिण भारत इंदिरा गांधी का अंधानुकरण कर रहा था? उस लिहाज से उत्तर भारत स्वतंत्रता के पक्ष में था और उसने आपातकाल को खारिज किया जबकि दक्षिण भारत का मामला इसके उलट था। क्या यह निष्कर्ष मान्य है? मुझे पता है कि इसे इस तरह प्रस्तुत करने पर यह भद्दा नजर आता है, ठीक वैसे ही जैसे यह कहना कि दक्षिण भारत समझदार है क्योंकि वह भाजपा को वोट नहीं देता।

कठोर राजनीतिक तथ्य यह है कि भाजपा के आलोचक उत्तर-दक्षिण विभाजन की बात करके खुद को ही नीचा दिखाते हैं। जैसा कि हमने कहा भी कि भारत का मौजूदा राजनीतिक भूगोल भाजपा की ताकत और उसकी कमियां दोनों दर्शाता है।

एक बार जब उसे चुनौती देने वाले इस तरह देखेंगे तो तस्वीर इतनी नाउम्मीदी भरी नहीं नजर आएगी। इस बात को भाजपा से बेहतर भला कौन समझेगा। अति आत्मविश्वास के बजाय पार्टी कठोर यथार्थवाद के कारण जीतती रही है। यह सही है कि भाजपा सभी प्रतिद्वंद्वियों को बहुत बड़े अंतर से पराजित करती हुई नजर आती है लेकिन उसकी भौगोलिक सीमाएं एकदम स्पष्ट हैं। पार्टी पहले ही प्रमुख राज्यों में अपना सर्वोत्कृष्ट प्रदर्शन कर चुकी है।

वर्ष 2019 में पार्टी 224 लोकसभा सीट पर 50 फीसदी से अधिक मत पाने में कामयाब रही थी जो बेहतरीन प्रदर्शन है। इनमें से अधिकांश सीट भाजपा के प्रभाव वाले राज्यों में थीं। इनमें कर्नाटक की 22 सीट शामिल थीं। अपराजेयता की तमाम बातों के बीच शेष भारत में यानी 319 सीट में से उसके केवल 79 में जीत मिली और उसने कुल 303 सीट पर जीत हासिल की। यानी 272 के बहुमत से 31 सीट अधिक।

भाजपा के थिंक टैंक को यह बात समझ में आती है और वह इसे लेकर चिंतित है। पार्टी को जिन सीट पर 50 फीसदी से अधिक मत मिले थे वहां अगर वह 60, 70 या 100 फीसदी अधिक मिल जाते हैं तो भी उसकी कुल सीट बढ़कर केवल 224 हो सकेंगी। यानी भाजपा को महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, ओडिशा और तेलंगाना में जीती सभी सीट पर जीत चाहिए। ये वही राज्य हैं जिनकी बदौलत पार्टी 79 सीट जीतकर 303 के आंकड़े तक पहुंची थी।

ये वही राज्य हैं जहां इंडिया गठबंधन का प्रदर्शन अच्छा रह सकता है, बशर्ते कि उसके नेता मतों का स्थानांतरण सुनिश्चित कर सकें। यही वजह है कि भाजपा इंडिया पर इस कदर हमलावर है।

2024 की चुनावी लड़ाई कुछ इस हिसाब से लड़ी जाएगी। इन चुनावों में मुकाबला भाजपा के गढ़ों तथा अन्य के बीच होगा। यह मुकाबला उत्तर बनाम दक्षिण के बीच तो कतई नहीं होगा जबकि भाजपा के हताश आलोचक कुछ ऐसा ही कह रहे हैं।

जनसत्ता

Date:11-12-23

आधी दुनिया के खिलाफ बढ़ते

योगेश कुमार गोयल

राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो यानी एनसीआरबी की नवीनतम रपट में एक बार फिर महिलाओं के प्रति बढ़ते अपराधों की चिंताजनक तस्वीर उभरी है। रपट के अनुसार देश भर में 2022 में महिलाओं के विरुद्ध आपराधिक घटनाओं के 4,45, 256 मामले दर्ज किए गए, जबकि 2021 में यह आंकड़ा 4,28,278 और 2020 में 3,71,503 था। महिलाओं के विरुद्ध आपराधिक घटनाओं के ये मामले 2021 की तुलना में करीब चार फीसद ज्यादा हैं। आंकड़ों से स्पष्ट है कि 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' तथा ऐसे ही कई अन्य नारों के जरिए भले सरकार महिला सशक्तीकरण का कितना ही दंभ क्यों न भरे, पर वास्तविकता यही है कि महिलाओं के खिलाफ होने वाले अपराधों के मामलों में कोई सुधार नहीं आया है। रपट के

मुताबिक उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र और राजस्थान में महिलाओं के खिलाफ अपराध सबसे ज्यादा बढ़े हैं। दिल्ली में महिलाओं के खिलाफ अपराध की दर सर्वाधिक बताई गई है।

दूसरे राज्यों के मुकाबले उत्तर प्रदेश में महिलाओं के खिलाफ अपराधों के मामलों में सर्वाधिक प्राथमिकी दर्ज हुई। हालांकि महिलाओं के खिलाफ अपराध के मामले में दिल्ली सबसे ऊपर है, जो लगातार तीसरे साल भी उन्नीस महानगरों में सबसे आगे है। प्रायः सभी राजनीतिक दल चुनावों के दौरान घोषणा करते हैं कि सत्ता में आने के बाद वे महिलाओं की सुरक्षा हर स्तर पर सुनिश्चित करेंगे, मगर हकीकत इससे कोसों दूर है। महिलाओं के प्रति अपराधों को लेकर हर साल सामने आते एनसीआरबी के आंकड़े हर बार बेहद अफसोसनाक तस्वीर प्रस्तुत करते हैं, जिनसे साफ पता चलता है कि महिलाएं स्वयं को कहीं भी सहज और सुरक्षित महसूस नहीं करतीं। देश में शायद ही कोई ऐसा राज्य हो, जहां महिलाओं के खिलाफ अपराधों में बढ़ोतरी न हुई हो।

एनसीआरबी की रपट के मुताबिक देश में 2022 में कुल 58,24,946 आपराधिक मामले दर्ज हुए, जिनमें से 4, 45, 256 मामले महिलाओं के खिलाफ अपराध के हैं हैरान करने वाली बात है कि महिलाओं पर अपराध के मामलों में अधिकतर पति, प्रेमी, रिश्तेदार या कोई अन्य करीबी शख्स ही आरोपी निकले। इन मामलों में महिलाओं के पति या रिश्तेदारों द्वारा 31.4 फीसद क्रूरता, 19.2 फीसद अपहरण, 18.7 फीसद बलात्कार की कोशिश और 7.1 फीसद बलात्कार करने के मामले शामिल हैं। रपट के मुताबिक देश में बलात्कार के कुल 31,516 मामले दर्ज किए गए, जिनमें सर्वाधिक 5399 मामले राजस्थान में, 3690मामले उत्तर प्रदेश, 3029 मध्यप्रदेश, 2904 महाराष्ट्र और 1787 मामले हरियाणा में दर्ज किए गए। महिलाओं के प्रति अपराध के मामले में देश की राजधानी दिल्ली सबसे आगे है, जहां 2022 में महिलाओं के खिलाफ अपराध के 14247 मामले दर्ज किए गए। यहां 2021 में 14277 और 2020 में 10093 ऐसे मामले दर्ज हुए थे। दिल्ली में अपराध की उच्चतम दर 144.4 दर्ज की गई है, जो देश की औसत अपराध दर 66.4 से बहुत ज्यादा है।

दिल्ली और राजस्थान जहां महिलाओं के लिए सबसे असुरक्षित राज्य हैं, वहीं दहेज के लिए जान लेने वालों में पहले स्थान पर उत्तर प्रदेश और दूसरे पर बिहार है। उत्तर प्रदेश में दहेज के लिए 2138 और बिहार में 1057 महिलाओं की हत्या कर दी गई, जबकि मध्यप्रदेश में 518, राजस्थान में 451 और दिल्ली में 131 महिलाओं की हत्या दहेज के लिए की गई। रपट के अनुसार प्रति एक लाख जनसंख्या पर महिलाओं के खिलाफ अपराध की दर 2021 में 64.5 फीसद से बढ़कर 2022 में 66 फीसद हो गई, जिसमें से 2022 के दौरान उन्नीस महानगरों में महिलाओं के खिलाफ अपराध के कुल 48,755 मामले दर्ज किए गए, जो 2021 के 43,414 मामलों की तुलना में 12.3 फीसद ज्यादा हैं।

महिलाओं के प्रति बढ़ते अपराधों को लेकर अब सबसे बड़ा सवाल यही है कि तमाम दावों, वादों और नारों के बाद भी आखिर देश में ऐसे अपराधों पर लगाम क्यों नहीं लग पा रही है? कितनी चिंतनीय स्थिति है कि जिस भारतीय संस्कृति में नारी को देवी के रूप में पूजा जाता है, वही नारी घर में भी सुरक्षित नहीं है। परिजनों के हाथों घरेलू हिंसा, दहेज हत्या, झूठी शान के लिए हत्या, बलात्कार और सहजीवन में जान गंवाने के मामले में स्थिति काफी दयनीय है। यह कितनी बड़ी विडंबना है कि भारत जैसे धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों को महत्त्व देने वाले देश में भी महिलाओं को भय के वातावरण में जीना पड़ता है। वे न अपने परिवार में, न आस-पड़ोस में और न ही बाहर के वातावरण में खुद को पूरी तरह सुरक्षित महसूस करती हैं।

राष्ट्रीय महिला आयोग के आंकड़े देखें तो इस साल 19 सितंबर तक ही आयोग में महिलाओं के खिलाफ अपराध की कुल 20,693 शिकायतें मिलीं, जो इस वर्ष के अंत तक काफी बढ़ने की संभावना है 2022 में आयोग को 30,957 शिकायतें मिली थीं, जो 2014 के बाद सर्वाधिक थी। 2014 में 30,906 शिकायतें दर्ज की गई थीं। 2021 में महिलाओं के खिलाफ अपराध की तीस हजार से ज्यादा शिकायतें मिली थीं। आयोग ने तेजाब हमले, महिलाओं के खिलाफ साइबर अपराध, दहेज हत्या, यौन शोषण और दुष्कर्म जैसी कुल चौबीस श्रेणियों में शिकायत दर्ज की। सर्वाधिक शिकायतें गरिमा के साथ जीने के अधिकार को लेकर दर्ज की गई, उसके बाद घरेलू हिंसा, दहेज उत्पीड़न, महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार, छेड़खानी और बलात्कार की शिकायतें हैं।

दिल्ली में निर्भया कांड के बाद महिलाओं के प्रति अपराधों पर लगाम कसने के लिए जिस प्रकार कानून सख्त किए गए थे, उससे लगा था कि समाज में संवदेनशीलता बढ़ेगी और ऐसे कृत्यों में लिप्त असामाजिक तत्त्वों के हौसले पस्त होंगे, पर विडंबना है कि समूचे तंत्र को झकझोर देने वाले ऐसे कई मामले सामने आने के बाद भी हालात ऐसे हैं कि शायद ही कोई दिन ऐसा बीतता हो, जब महिला हिंसा से जुड़े अपराधों के मामले सामने न आते हों। ऐसे अधिकांश मामलों में प्रायः पुलिस-प्रशासन का भी गैरजिम्मेदाराना और लापरवाही भरा रवैया ही सामने आता रहा है। यह निश्चित रूप से कानून-व्यवस्था और पुलिस- प्रशासन की उदासीनता का ही नतीजा है कि महिलाओं के खिलाफ अपराध करने वालों में शायद ही कभी खौफ दिखता हो।

सवाल है कि कानूनों में सख्ती, महिला सुरक्षा के नाम पर कई तरह के कदम उठाने और समाज में आधी दुनिया के आत्मसम्मान को लेकर बढ़ती संवेदनशीलता के बावजूद आखिर ऐसे क्या कारण हैं कि बलात्कार के मामले हों, छेड़छाड़, मर्यादा हनन या फिर अपहरण, क्रूरता, आधी दुनिया के प्रति अपराधों का सिलसिला थम नहीं रहा है? इसका सबसे बड़ा कारण तो यही है कि कड़े कानूनों के बावजूद असामाजिक तत्त्वों पर अपेक्षित कड़ी कार्रवाई नहीं होती।

स्पष्ट है कि केवल कानून कड़े कर देने से महिलाओं के प्रति हो रहे अपराधों पर लगाम नहीं कसी जा सकेगी। इसके लिए जरूरी है कि सरकारें प्रशासनिक मशीनरी को चुस्त दुरुस्त करने के साथ उसकी जबाबदेही सुनिश्चित करें और ऐसे मामलों में कोताही बरतने वाले जिम्मेदार अधिकारियों के खिलाफ सख्त कदम उठाए जाएं। ऐसे मामलों में प्रायः पुलिस-प्रशासन की जिस तरह की भूमिका सामने आती रही है, वह काफी हद तक इसके लिए जिम्मेदार है। पुलिस किस प्रकार ऐसे अनेक मामलों में पीड़िताओं को ही परेशान करके उनके जले पर नमक छिड़कने का काम करती रही है, ऐसे उदाहरण अक्सर सामने आते रहे हैं। ऐसी परिस्थितियों के मद्देनजर अपराधियों के मन में पुलिस और कानून का भय कैसे उत्पन्न होगा और कैसे महिलाओं के खिलाफ अपराधों में कमी की उम्मीद की जाए ?

राष्ट्रीय सहारा

Date:11-12-23

हड़बड़ी का फैसला

संपादकीय

संसद में एथिक्स समिति की रिपोर्ट के सदन में पेश होने के बाद तृणमूल कांग्रेस की सांसद महुआ मोइत्रा को लोक सभा से निष्कासित कर दिया गया। महुआ मोइत्रा पर पैसे लेकर सदन में सवाल पूछने का गंभीर आरोप है। हालांकि वह लगातार इसका खंडन कर रही हैं। विपक्ष ने इसे बदले की कार्रवाई बता कर लोकतंत्र के लिए काला दिवस कहा है। आरोप है कि मोइत्रा ने अपना लॉग-इन पासवर्ड उद्योगपति मित्र दर्शन हीरानंदानी के साथ साझा किया। हालंकि हीरानंदानी ने अपने शपथ पत्र में पैसों के लेन-देन की कोई बात नहीं की। कमेटी ने महुआ मोइत्रा को अनैतिक आचरण और गंभीर रूप से खराब बर्ताव का दोषी करार दिया। मोदी सरकार के कार्यकाल में लोक सभा 93 तथा राज्य सभा के 48 सांसदों का अलग-अलग आरोपों में रिकार्ड संख्या में निलंबन किया गया। हैरत नहीं होनी चाहिए कि इनमें से कोई भी भाजपा का सदस्य नहीं था। सरकार का रवैया अलग-अलग सदस्यों पर बिल्कुल भिन्न है। उसका कोई मापदंड नहीं स्पष्ट होता। सरकार का पक्षपातपूर्ण और विरोधाभाषी रवैया बदले की भावना को स्पष्ट दर्शाता है। संसद की गरिमा, कानून और व्यवहार का उल्लंघन सभी सदस्यों के लिए समान है। विशेषज्ञों के अनुसार मोइत्रा के पास अदालत जाने का रास्ता भी खुला है। हालांकि वह इस फैसले के प्रति नाराजगी जताते हुए चुनौती दे चुकी हैं कि अभी उनके पास तीस साल हैं, और वह संसद में वापस लौटेंगी। विशेषाधिकार और एथिक्स कमेटी का काम सदस्यों के दुर्व्यवहार की समीक्षा करना है। वे संसद की मर्यादा का ख्याल रखती हैं। जांच के संबंध में कोई नियम न होने के बावजूद एथिक्स कमेटी की जिम्मेदारी है कि शख्स को अपनी बात रखने की आजादी दे । अन्य सदस्यों के पक्ष की भी अनदेखी न होने दे। सत्य की खोज के लिए उचित तरीके ईजाद किए जाने चाहिए। जल्दबाजी या विपक्ष पर दबाव बनाने के उद्देश्य से लिया गया यह निर्णय स्वयं में विशेषाधिकारों का उल्लंघन ही कहा जाएगा। सांसदों का रवैया और आचरण अब तो जनता लाइव प्रसारण के दौरान खुद देखती है। मोइत्रा पर आरोप सिद्ध होने के बाद सांकेतिक सजा के माध्यम से अन्य सांसदों को सतर्क किया जाना बेहतर होता। इन आरोपों की सत्यता पर पहले ही प्रश्न चिह्न हैं। जनता द्वारा चुने गये सभी प्रतिनिधि दूध के धुले तो नहीं हैं, बड़ा सवाल है कि गंभीर आपराधिक छवि वाले सदस्यों को लेकर ये कमेटियां क्या कभी अपना रुख स्पष्ट करने का साहस दिखा सकती हैं।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:11-12-23

एक दूजे की दिमागी चुनौतियों को समझना सुलझना होगा

चंद्रकांत लहारिया

शायद ही कोई दिन गुजरता है, जब हम अखबारों में आत्महत्या की खबरें नहीं पढ़ते। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के ताजा आंकड़ों से पता चलता है कि 2022 में खुदकुशी के 1.7 लाख से अधिक मामले सामने आए, जो साल 2021 से 4.2 प्रतिशत अधिक है। रिपोर्ट के मुताबिक, आर्थिक तंगी, पारिवारिक समस्या और बीमारी इंसान के इस तरह टूट जाने के तीन प्रमुख कारण हैं, मगर नशे व शराब की लत, शादी से जुड़े झगड़े, गरीबी और कर्ज भी बढ़ती आत्महत्या की वजहें हैं। इस साल की शुरुआत से राजस्थान के कोटा शहर में पढ़ने वाले छात्रों द्वारा आत्महत्या की दुख भरी खबरें तो आती ही रहीं, अभी चंद दिनों पहले आंध्र प्रदेश के एक परिवार का काशी आकर खुदकुशी करना भी चिंतनीय तस्वीर पेश करता है। साफ है, आत्महत्या की खबरें सामाजिक और शिक्षा तंत्र की विफलता का संकेत हैं।

खुदकुशी को समय रहते 'इंटरवेंशंस' यानी जरूरी प्रयास करके रोका जा सकता है। भारत करीब एक-तिहाई खुदकुशी किसानों, खेतिहर मजदूरों और दिहाड़ी मजूदरों ने की है। यह आंकड़ा कृषि क्षेत्र की चुनौतियों को रेखांकित करता है और सरकारों को सभी स्तरों पर इनसे जुड़े मुद्दों को समझने और उन पर काम करने की जरूरत बताता है। फिर, पुराना संयुक्त परिवार भी टूटता जा रहा है। ऐसे में, लोगों के पास मुश्किल वक्त के लिए कोई 'सपोर्ट सिस्टम' नहीं है। कुछ यही हाल शिक्षा क्षेत्र का है, जिसका तेजी से बाजारीकरण हुआ है। इसमें शिक्षण संस्थानों को ऐसी मशीन के रूप में देखा जाता है, जिसमें बच्चे को दाखिल करने के बाद यह उम्मीद की जाती है कि वह डॉक्टर या इंजीनियर बनकर ही वहां से निकलेगा। किशोरों में आत्महत्या 15 से 29 साल के आयु वर्ग में हो रही है और राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के अनुसार, औसतन हर घंटे एक छात्र खुदकुशी करता है। स्पष्ट है, पढ़ाई का दबाव भी एक बड़ी वजह है।

आज का समय प्रतिस्पद्धों का है। यह एक ऐसी दौड़ है, जिसे हर व्यक्ति हर कीमत पर जीतना चाहता है। मगर यह कीमत चुकाई जाती है, अत्यधिक मानसिक तनाव, अनिद्रा और स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के रूप में। तनाव मधुमेह से लेकर ब्लड प्रेशर और दिल की गंभीर बीमारियों तक को जन्म दे सकता है। वैसे भी, भारत में हर आठ में से एक व्यक्ति को कोई न कोई (हल्की- फुल्की ही सही) मानसिक समस्या होती है, ऐसा राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण 2015-16 में पाया गया था। कोविड महामारी के बाद तो यह चुनौती और बढ़ती नजर आ रही है। हमारे देश में किसी भी आयु वर्ग के लिए पर्याप्त मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं का अभाव है। फिर, मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं से जुड़ी कई भ्रांतियां भी हैं, जो लोगों को खुलकर सामने नहीं आने देतीं।

आत्महत्या के बढ़ते मामले मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं की कमजोरी और अनुपलब्धता को रेखांकित करते हैं। हालांकि, भारत में वर्ष 2014 में राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य नीति जारी की गई थी, और उसके बाद कुछ कदम भी उठाए गए हैं। जैसे, सरकारी और कुछ स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा मानसिक स्वास्थ्य हेल्पलाइन चलाई जाती है, पर इनके विस्तार की जरूरत है। केंद्र और राज्य स्तर पर स्वास्थ्य नीति निर्माताओं को स्वास्थ्य विशेषज्ञों के साथ मिलकर आत्महत्या के कारणों की पड़ताल करनी चाहिए। जिन राज्यों और जिलों में आत्महत्या के अधिक मामले सामने आ रहे हैं, वहां पर विशेष कदम उठाने की जरूरत है। किसानों और कामगारों के मानसिक स्वास्थ्य व उनकी चुनौतियों को नीतिगत कदमों से दूर करना होगा। हर व्यक्ति को तनाव कम करने के लिए व्यक्तिगत स्तर पर कदम उठाने चाहिए। हालांकि, सबसे

बड़ी जरूरत एक ऐसा सामाजिक ताना-बाना बुनने की है, जिसमें हर व्यक्ति दूसरे की मानसिक चुनौती को समझे और उसकी सहायता करे।

याद रखें, मानसिक रोग भी किसी अन्य शारीरिक बीमारी की तरह ही है और इलाज से यह ठीक हो सकता है। लिहाजा, जिस प्रकार हम खांसी, बुखार, मधुमेह जैसी बीमारियों का इलाज कराने डॉक्टर के पास जाते उसी तरह मानसिक परेशानी होने पर भी बेझिझक डॉक्टर के पास पहुंचे। इससे एक स्वस्थ समाज का सपना भी जल्द साकार हो सकेगा।